

## आदिवासी साहित्य विमर्श

निलेश डामसे

स्नातक एवं स्नातकोत्तर, हिंदी विभाग, मालती वसंतदादा पाटील कन्या महाविद्यालय, इस्लामपुर, सांगली, महाराष्ट्र, भारत।

### प्रस्तावना

साहित्य जगत में दलित विमर्श, स्त्री विमर्श की चर्चा के बाद अब आदिवासी विमर्श की चर्चा शुरू हो गई है। किसी भी विमर्श या चिंतन का उद्देश्य अराजकता या वैमनस्य निर्माण करना नहीं होता। विमर्श या चिंतन का प्रमुख उद्देश्य होता है किसी वर्ग विशेष का पक्षधर होना, अर्थात् ऐसे वर्ग का पक्ष लेना जिसके वजूद को अन्य वर्गों ने अपने सामने कुछ भी नहीं समझा। आज की समाज व्यवस्था में आदिवासी वर्ग ऐसा ही है, जो मुख्य धारा से दूर हाशिये पर रहा है। सामान्य लोगों के मन में आदिवासी समाज को लेकर कई मान्यताएँ दिखाई देती हैं, जैसे आदिवासी अर्थात् दूर जंगलों में रहनेवाले नग्न लोग जो नरभक्षी होते हैं आदि...। अब तक उपेक्षित रहे इसी वर्ग का साहित्य द्वारा पक्ष लिया जा रहा है। यही है आदिवासी विमर्श।

जब हम साहित्य क्या है? यह प्रश्न करते हैं, तो हमें जवाब मिलता है— कविता, उपन्यास, नाटक, निबंध, संस्मरण, जीवनी, आत्मकथा, यात्रावृत्त, रिपोर्ताज आदि सारी विधाएँ साहित्य हैं। इतिहास, धर्म, दर्शन, राजनीतिशास्त्र, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र, पुरातत्व, भूगोल, विज्ञान आदि विषयों के पुस्तकों को भी ज्ञान का साहित्य कहकर 'साहित्य' के परिवेश में रखा जाता है। साहित्य के लिए अंग्रेजी में 'लिटरेचर' शब्द प्रचलित है, वह भी व्यापक रूप में यही अर्थ देता है।

साहित्य को समाज का दर्पण कहा गया है। इस दर्पण में आदिवासी की कथा—व्यथा क्या है? भारतीय विद्वानों ने साहित्य की परिभाषा करते हुए यह कहा है कि, वह अभिव्यक्ति साहित्य है जो सबका हित करे। अर्थात् प्रत्येक प्राणी का हित करनेवाला साहित्य ही वास्तविक साहित्य है। यदि यह सच है तो जिस समाज में आदिवासी अब तक हाशिये पर रहा हो उस समाज के साहित्य से क्या आदिवासी का अब तक कोई हित हुआ है? डॉ. शैलजा सक्सेना साहित्य के स्वरूप पर विचार करते हुए कहती हैं कि—“साहित्य जीवन सा गहरा, जीवन से जुड़ा, जीवन की ही तरह हर समय नया रंग—रूप दिखानेवाला होता है। कितना ही रूप पकड़े, कितना ही समझे पर फिर भी कुछ कहना—सुनना, समझना शेष रह जाता है।”<sup>1</sup> आदिवासी समाज आज तक इस सभ्य समाज से कोसों दूर रहा है। इसके जीवन के कई रूप—रंग हैं, जो उनके गीतों, नृत्यों, कलाओं और आज कहानी, कविता जैसे माध्यमों द्वारा भी व्यक्त हो रहा है और यही है आदिवासी साहित्य।

आचार्य कुन्तक साहित्य की परिभाषा देते हुए कहते हैं— “शब्द और अर्थ का मनोहर विन्यास साहित्य है, जिसमें शब्द और अर्थ इतने परस्पर, इतने संतुलित हो कि, न तो कोई न्यून हो और न कोई अधिक हो।”<sup>2</sup> आदिवासी समाज की अपनी भाषाएँ हैं। इन भाषाओं में रचे साहित्य के शब्दों और अर्थों को क्या सामान्य समाज पकड़ पाया है?

एक अनुसंधान द्वारा यह निश्चित हो गया है कि, मधुमखियाँ एक प्रकार का नाच करके अन्य मधुमखियों से बातचित करती हैं। अर्थात् उनके नाच की भी एक भाषा है। आदिवासी समाज ने भी इन्हीं वन्यजीवों से कला को आत्मसात किया है। “आदिवासी विश्व

की कला परंपरा में गाने के लिए नाचना जरूरी, नाचने के लिए बजाना जरूरी है, बजाने के लिए गाना जरूरी है और गाना, नाचना, बजाना परिवेश के बगैर संभव नहीं है। परिवेश यानी की प्रकृति। इन सब के एक सुर और ताल में सज जाने पर ही गीतों (साहित्य) की रचना होती है।”<sup>3</sup>

महाराष्ट्र में महादेव कोली, ठाकर आदि आदिवासियों में 'बोहड़ा' यह नृत्यनाट्य खेला जाता है। इसमें आदिवासी कलाकार अपने मुख पर विभिन्न मुखौटे धारण करते हैं और संगीत के साथ नाचते हुए यह नाट्य खेला जाता है। आदिवासी अभ्यासक डॉ. गोविंद गारे जी के मतानुसार हिंदुओं तथा रामायण, महाभारत के प्रभाव के कारण इनमें से कुछ पात्र भी बोहड़ा में होते हैं। इन पात्रों की विशेषता यह होती है कि हर पात्र के नाच के लिए उसकी स्वतंत्र धून तथा नाच होता है। साहित्य यदि कलात्मक अभिव्यक्ति है तो आदिवासियों का यह 'बोहड़ा' नृत्यनाट्य भी साहित्य है। यहाँ और अधिक स्पष्ट करने के लिए मराठी आदिवासी साहित्यिक वाहरु सोनावणे का मत महत्वपूर्ण लगता है। वे कहते हैं “आदिवासी समाज में कई प्रथाएँ, लोकगीत और नाटक तथा अन्य कलाएँ विद्यमान हैं जिसे शब्दबद्ध नहीं किया गया है। हजारों वर्षों से चली आ रही परंपराएँ कभी थमी नहीं हैं। वे परंपराएँ आज भी मौलिक रूप में आदिवासी जीवन का अभिन्न अंग हैं।”<sup>4</sup>

महादेव कोली आदिवासियों में होली, विवाह जैसे अवसरों पर 'नढंग' (भालू) निकाली जाती है। एक आदिवासी युवक बदन पर काले वस्त्र लपेटता है, कमर में घुंगरू बांधकर चेहरे पर काला रंग लगाकर (यह काला रंग मुख्यतः चुल्हे की या तवे की कालीख होती है।) नढंग अर्थात् भालू बन जाता है। भालूवाला, उसकी पत्नी तथा अन्य पात्र बनते हैं। स्त्री पात्र पुरुष ही करते हैं। नाच करने के बाद इन पात्रों में संवाद होता है। यह संवाद किसी लिखित स्क्रिप्ट नुसार नहीं होता; उद्देश्य केवल मनोरंजन करना होता है। आदिवासियों की यह 'नढंग' निकालने की प्रथा भी आदिवासी साहित्य ही है, जो शब्दबद्ध नहीं है।

वंदना टेटे जी आदिवासी साहित्य के बारे में विचार व्यक्त करते हुए कहती हैं— “हम कह सकते हैं कि आदिवासी साहित्य सिर्फ शब्दों में लिखित कल्पना, अनुभव, भाव, विचार और यथार्थ की कलात्मक स्वानुभूति अथवा सहानुभूति कि अभिव्यक्ति नहीं है; बल्कि यह मानव सहित समस्त जीव जगत, प्रकृति और समष्टि का जीवंत परफॉर्मेंस है जो अध्यात्मिक अनुष्ठानों, दैनंदिन क्रियाकलापों और विविध कलात्मक अभिरुचियों व अभिव्यक्ति के भिन्न-भिन्न रूपों के द्वारा निरंतर प्रदर्शित होता रहता है।”<sup>5</sup> हम यह भी कह सकते हैं कि आदिवासियों द्वारा किया जानेवाला प्रकृति का अनुकरण भी एक प्रकार का साहित्य है।

प्रकृति की गोद में पलने वाले आदिवासी प्रकृति का अनुकरण करनेवाले होते हैं। उस मिट्टी की सुगंध उनके रंग-रंग में समाई होती है। महाराष्ट्र के अकोले तहसील में 'उड़दावणे' नामक एक छोटेसे गाँव में रहनेवाले एक कलाकार हैं— ठकाबाबा गांगड। सन 1965 में 26 जनवरी के परेड में महाराष्ट्र का प्रतिनिधित्व करनेवाले 'कलापथक' में ठकाबाबा गांगड शामिल थे। लालबहादूर शास्त्री

तथा इंदिरा गांधी के हाथों सुवर्ण पदक से ठकाबाबा को सम्मानित किया गया था। जिस नृत्य ने राज्य का प्रतिनिधित्व किया वह नृत्य था 'कांबड' नृत्य (आदिवासी नृत्य)।

ठकाबाबा गांगड ने प्रकृति की गोद में पलते हुए बचपन से ही जंगली जानवरों के आवाज की नकल शुरू की। किसी विशिष्ट स्थिति में ये जानवर और पंछी किस प्रकार की आवाज निकालते हैं, इसका निरीक्षण करते हुए उन जानवरों और पंछियों से संवाद करने लगे। ठकाबाबा स्वयं कहते हैं कि— "इन सबसे संवाद करते हुए अब मैं ही प्रकृति बन गया हूँ।" ठकाबाबा का इस तरह प्रकृति से एकरूप होना भी आदिवासी साहित्य का ही एक अंग है, जो हमें सिखाता है कि प्रकृति से क्या लेना है।

आज देखा जाए तो लिपिबद्ध आत्माभिव्यक्ति को ही साहित्य माना जाता है। आज यांत्रिक विकास के कारण 'भाषा' वहीं है जिसकी लिपि है, जिसके पास लिपिबद्ध व्याकरण है यह मान्यता रूढ़ हो गई है। यह माना जाता है कि व्याकरण संगत भाषा के जरिए लिखा जाने वाला ही साहित्य है। आज यह भी माना जाता है कि आदिवासी भाषाएँ केवल बोलियाँ हैं और उनका साहित्य साहित्य नहीं है। वह मौखिक साहित्य है किंतु आदिवासियों की इस मौखिकता में उनके ज्ञान, विश्वास और परंपराओं का समृद्ध भांडार समाया है। यह मौखिक साहित्य कोई कल्पना का साहित्य नहीं है, बल्कि वास्तविक अनुभवों से रचा-बसा सच्चाई का साहित्य है। "चित्रांकन कला एवं स्थापत्य, कहन, गायन और नृत्य यानी परफॉर्मेंस की आदिवासी परंपराओं में हम इस ऑरेलिटी (मौखिकता) को प्रत्यक्षतः देख सकते हैं। इन्ही रूपों के जरिए आदिवासी समाज अपनी परंपरा और विश्वदृष्टि को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक ले जाता रहा है। ले जा जहा है।"<sup>6</sup>

आदिवासियों की मौखिकता (ऑरेचर) में ही आदिवासी ज्ञान और दर्शन है। "आदिवासी दर्शन के प्रवाह को संरक्षित, प्रसारित और साझा करनेवाला तथा अपनी मूल भाषाओं में व्यक्त होनेवाला साहित्य ही आदिवासी साहित्य है।"<sup>7</sup> जून 2014 को रांची (झारखंड) में आयोजित राष्ट्रीय अधिवेशन में आदिवासी साहित्य की बुनियादी शर्तों को आवश्यक माना गया; जिसे आदिवासी साहित्य का रांची घोषणापत्र कहा जाता है। वह इस प्रकार से है—

1. "प्रकृति की लय-ताल और संगीत का जो अनुसरण करता हो।
2. जो प्रकृति और प्रेम के आत्मीय संबंध और गरिमा का सम्मान करता हो।
3. जिसमें पुरखा-पूर्वजों के ज्ञान-विज्ञान, कला-कौशल और इंसानी बेहतरी के अनुभवों के प्रति आभार हो।
4. जो समूचे जीव जगत की अवहेलना नहीं करें।
5. जो धनलोलुप और बाजारवादी हिंसा और लालसा का नकार करता हो।
6. जिसमें जीवन के प्रति आनंदमयी अदम्य जिजीविषा हो।
7. जिसमें सृष्टि और समष्टि के प्रति कृतज्ञता का भाव हो।
8. जो धरती को संसाधन की बजाय माँ मानकर उसके बचाव और रचाव के लिए खुद को उसका संरक्षक मानता हो।
9. जिसमें रंग, नस्ल, लिंग, धर्म आदि का विशेष आग्रह न हो।
10. जो हर तरह की गैर-बराबरी के खिलाफ हो।
11. जो भाषाई और सांस्कृतिक विविधता और आत्मनिर्णय के अधिकारपक्ष में हो।
12. जो सामंती, ब्राह्मणवादी, धनलोलुप और बाजारवादी शब्दावलियों, प्रतिकों, मिथकों और व्यक्तिगत महिमामंडन से असहमत हो।
13. जो सहअस्तित्व, समता, सामूहिकता, सहभागिता और सामंजस्य को अपना दार्शनिक आधार मानते हुए रचाव-बचाव में यकीन करता हो।

14. सहानुभूति, स्वानुभूति की बजाय सामुहिक अनुभूति जिसका प्रबल स्वर-संगीत हो।

15. मुल आदिवासी भाषाओं में अपने विश्वदृष्टिकोण के साथ जो प्रमुखतः अभिव्यक्त हुआ हो।"<sup>8</sup>

अंततः निष्कर्ष रूप में यहीं कहेंगे कि सरकार की नई उदारीकरण की नीतियों के कारण आदिवासी समाज के शोषण की प्रक्रिया अत्यंत तेज हो गई है। विकास के नाम पर जंगलों को तोड़ा जा रहा है। जो आदिवासी जंगलों में रह रहे थे उनकी जमीन अब उनसे छिनी जा रही है। इस विकास प्रक्रिया ने आदिवासियों का जल, जमीन और जंगल का अधिकार ही खत्म कर दिया है। अपने अस्तित्व को खतरे में देख आदिवासी समाज अपने अस्तित्व को बचाने के लिए सजग हो गया है। अपनी अस्मिता बचाये रखने के लिए अपनी भाषा, संस्कृति, कला, मान्यताएँ आदि की रक्षा के लिए संघर्ष कर रहा है। आज के इस समसामाईक युग में अपनी आदिवासी पहचान कायम रखने के लिए जो सामुहिक अनुभूति का साहित्य लिखा जा रहा है वही है आदिवासी साहित्य। यह आदिवासी साहित्य विमर्श हाशिए के समाज को मुख्य प्रवाह में लाने में सहायक सिद्ध हो रहा है।

### संदर्भ

1. साहित्य की परिभाषा – वेबलिंग [www.sahityakunja.net](http://www.sahityakunja.net)
2. साहित्यिक निबंध- सं. डॉ. गणपतिचन्द्र गुप्त –संस्करण 1989, पृष्ठ सं. 05
3. आदिवासी दर्शन और साहित्य- सं. वंदना टेटे- संस्करण 2015, पृष्ठ सं. 20
4. वही, पृष्ठ सं. 20
5. वही, पृष्ठ सं. 21
6. वही, पृष्ठ सं. 36
7. वही, पृष्ठ सं.49
8. वही, पृष्ठ सं. 139